''भारतीय संस्कृति का उदान स्वरूप अतिथि पूजन''

*डॉ. धर्मसिंह गुर्जर

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति कभी एकांगी नहीं रही है, सदा से ही इसने जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों का समन्वय किया है। इहलोक को अंगीकृत करते हुए परलोक की उपेक्षा नहीं की है और परलोक की प्राप्ति की कामना से इलहलोक को नहीं त्यागा है क्योंकि इस संस्कृति का प्रमुख ध्येय 'धर्म' की साधना है। इसी को आधार बनाकर आश्रम व्यवस्था के रूप में भारत ने एक सुन्दर सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत ढूंढा जिससे व्यक्ति के लिए समुचित रूप से अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना संभव हो जाए। ''जीवेम शरद्ः शतम्ः और ''शतायुर्वै पुरूष'' इन वेदोक्तियों के अनुसार मनुष्य की सम्पूर्ण आयु 100 वर्ष की मानकर जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को ध्यान में रखकर उसे चार आश्रमों में विभक्त किया गया है – ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम, जिनको क्रमशः ज्ञान–प्राप्ति के निमित्त तपश्चर्या की ओर प्रवृत्ति कहा जा सकता है।

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। शेष तीन ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यासाश्रम इसी पर आश्रित हैं। महाभारत में इस आश्रम की तुलना माँ से करते हुए कहा है कि ''जिस प्रकार माता का आधार पाकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ के आधार से अन्य सभी आश्रम भी स्वतः संचालित होते रहते है।

''यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।

एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः।।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में लिखा है कि गृहस्थाश्रम ही सबका उपकार करने में समर्थ है। – ''सर्वोपकारक्षम आश्रमोडयम्''

ब्राह्मण–ग्रन्थों के अनुसार व्यक्ति जन्म लेते ही देवताओं, पितरों, ऋषियों, मनुष्यों तथा सृष्टि के अन्य प्राणियों का ऋणी हो जाता है और इन ऋणों से मुक्ति पाना मनुष्य का अनिवार्य कर्त्तव्य होता है। इन ऋणों को ब्रह्मयज्ञ, नृयज्ञ तथा भूतयज्ञ नामक महायज्ञों से चुकाकर व सदाशयता और मानवता का परिचय देता है। गृहस्थाश्रम में ही देवताओं, पितरों और अतिथियों के लिए आयोजन होते हैं जिनसे त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ व काम की सिद्धि होती है। मनुस्मृति में कहा गया है।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम।

होमो दैवो बलिभौतो नृयज्ञोडतिथि–पूजनम।। (3/70)

अध्यापन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, हवन देवयज्ञ, बलिकर्म भूतयज्ञ तथा अतिथि पूजन (सत्कार) मनुष्ययज्ञ कहलाता है।

इन पंचयज्ञों का विधा न प्राणी–कल्याण की भावना से प्रेरित है तथा परलोक की भावना से इसे धर्म के साथ अनुप्राणित कर दिया गया है। कहा गया है –

पंचयज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमी।

तस्य नायं च परो लोको भवति धर्मतः।।

''जो गृहस्थाश्रमी मोह के वशीभूत होकर पंचयज्ञों का अनुष्ठान नहीं करेगा, वह धर्मानुसार इहलोक व परलोक में समृद्धि से वंचित रहेगा।

इन पंचयज्ञों में मनुष्ययज्ञ अर्थात् अतिथि–सेवा को ही श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि हिन्दू धर्म में सदा से ही अतिथि पूजनीय होता है। संभवतः इसीलिए अतिथियज्ञ दैनिक गृहस्थ जीवन का नियमित अंग माना गया है।

अतिथि के प्रति पूज्य–भावना की सत्ता वैदिक आर्यो में प्राचीन काल से रही है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है, जहाँ अतिथि को अग्नि का रूप कहा गया है।

पन्यांस जातवेदसं यो देवतात्युद्यता। हव्यान्यैरद्दिवि। 8/74/3

कठोपनिषद् में भी अतिथि को वैश्वानर की उपमा देते हुए कहा गया है

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणां गृहान्।

तस्यैतां शान्ति कुर्वान्ति हर वैवस्वतोदकम्।। 1/1/7

इसीलिए जल द्वारा उसकी शान्ति करने का आदेश दिया गया है तैत्तिरीय उपनिषद् भी शिक्षावल्ली में आतिथ्य पर बल देते हुए ''अतिथि देवो भव'' की घोषणा करता है।

इसके अतिरिक्त पुराणों और स्मृतियों में भी अतिथि के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन पाए जाते हैं कि जो निरन्तर चलता है, ठहरता नही, उसे अतिथि कहते है।

भारत की धर्मप्राण प्रजा जो कि मनु द्वारा निर्धारित कर्म के नियमों का आदरपूर्वक पालन करती है, वह स्वयं कष्ट सहती हुई भी अतिथि परिचर्या में कोई कमी नहीं आने देती क्योंकि अतिथि के विमुख लौट जाने पर गृहस्थ को दोष लगता है और जिसके घर से अतिथि निराश होकर चला जाता है, वह उस गृहस्थ को पाप देकर और उसके पुण्य लेकर चला जाता है, वह उस गृहस्थ का पाप देकर और उसके पुण्य लेकर चला जाता है। अतिथि को उचित सम्मान न देने पर गृहस्थ गोहत्या एवं स्त्रीहत्या के पाप का भागी भी माना जाता है, देवता व पितर भी उस गृहस्थ का त्याग कर देते हैं। कठोपनिषद् में वर्णन मिलता है।

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान।

एतदवृङ्क्ते पुरूषस्याल्पमेधसो यस्थानश्नन् वसित ब्राह्मणो गृहे।। (1/1/8)

जिसके घर में अतिथि ब्राह्मण भूखा रहता है, उस न्यून, बुद्धि वाले मनुष्य की आशा, प्रतीक्षा और उससे मिलने वाले सुख, श्रेष्ठ वाणी, कामनापुर्ति, पुत्र, पशु और वैभव–सभी को ही क्षुधातुर अतिथि नष्ट कर डालता है।

बोधायन धर्मसूत्र में अतिथि–सत्कार करने वाले मनुष्य के पुण्य के विषय में कहा गया है ''जो व्यक्ति अतिथि को एक रात अपने घर में ठहराता था, वह पृथ्वी के सुखों को प्राप्त करता थां यदि दो रात ठहरता था तो अंतरिक्ष लोकों की विजय प्राप्त करता था। यदि तीन रात ठहराता था तो वह स्वर्गीय लोकों को प्राप्त करता था और यदि अतिथि को अनेक रात ठहराता था तो अनेक रात ठहराता था तो अनेक सुखों को प्राप्त करता था।

ऐतरेय आरण्यक में कहा गया है कि केवल सज्जन ही आतिथ्य के पात्र हैं। जबकि विष्णुपुराण में कहा गया है कि स्वाध्याय, गोत्र, चरण, कुल बिना पूछे ही गृहस्थ को चाहिए कि वह अतिथि को विष्णुरूप मानकर उसकी सेवा करे क्योंकि देश, नाम, विद्या, कुल पूछ कर जो अन्न देता है, उसे पुण्यफल नहीं मिलता और फिर वह स्वर्ग को भी नहीं प्राप्त करता।

इसी मोक्ष की कामना से अभिभूत होकर शबरी ने अपनी कुटिया में पधारे श्रीराम की अपने चखे हुए बेरों से परिचर्या की, जिसे लक्ष्मण पधारे श्रीराम ने सहर्ष स्वीकार किया क्योंकि अतिथि भी अपनी सेवा करने वाले को सम्मान देकर स्वयं सम्मानित होता है। योगेश्वर कृष्ण द्वारा निर्धन सुदामा के पग अपने आंसुओं से पखारने का प्रसंग किसी भी पाठक को द्रवित करने में समर्थ है। नरोत्तमदास लिखित सुदामा–चरित की ये काव्य–पंक्तियां अविस्मरणीय हैं।

देखि सुदामा की दीन दशा करूणा करिकै करूणानिधि रोये।
पानि परात को हाथ छुयों नहिं नैनन के जल सों पग धोये।।

इन कतिपय उदाहरणों से सिद्ध है कि भारतीय संस्कृति में अतिथि–सत्कार को उच्चतम सम्मान दिया गया है। नृयज्ञ–रूप में यह सामाजिक मूल्य मानव का मानव के प्रति हार्दिक सम्मानभाव है। इसमें विनयशीलता, दानपरायणता, शुद्धचित्तता, परापकारवृत्ति और कृतज्ञता जैसे पावन प्रतिष्ठा और यश प्रदान करते है। इसलिए तैत्तिरीय उपनिषद् में शिष्य को गृहस्थाश्रम में प्रवेश दीक्षा देते समय आचार्य के श्रीमुख से यह उपदेश दिलवाया गया है कि अतिथि को देवता मानो– ''अतिथि देवो भव।''

***सह आचार्य**
व्याकरण विभाग
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
बौंली (राज.)

संदर्भः

1. यजु. 36/24 अथर्व 19/67/2–81
2. मैत्रायणी संहिता 16/4 1
3. महा. शांतिपर्व 12/269/6 1
4. रघु. 5/10 1
5. मनुस्मृति 3/70 1
6. महा. शांति पर्व 12/146/7 1
7. ऋग्वेद 8/74/3 1
8. कठोरपनिषद् 1/1/7 1
9. तैत्तिरीय उपनिषद् 1/11/2 1
10. कठोपनिषद् 1/1/8 1
11. विष्णु पुराण 3/11/59–63 1
12. सुदामा चरित (42) 1
13. तैत्तिरीय उपनिषद् 1/11/21